बच्चों पर शारीरिक दण्ड की समाजशास्त्रीय पड़ताल

कंचन शर्मा

पाठशाला के तीसरे अंक में हमने अनुशासन बनाए रखने के लिए दिए जाने वाले शारीरिक दण्ड के दार्शनिक और ऐतिहासिक पहलुओं की पड़ताल की थी। ख़ासतौर पर बच्चों को दिए जाने वाले शारीरिक दण्ड के गहरे समाजशास्त्रीय तर्क और आधार हैं। अब जबकि शिक्षा का अधिकार क़ानून (2009) किसी भी तरह के शारीरिक दण्ड को प्रतिबन्धित करता है, समाज में इसकी स्वीकार्यता एवं मान्यता को समझना रोचक विषय है। इस आलेख में स्कूल तंत्र के तीन प्रमुख आयाम अभिभावक, शिक्षक एवं विद्यार्थियों के नज़रिए से इसके व्यावहारिक पहलुओं को समझने की कोशिश की है। सं.

बच्चों पर होने वाली शारीरिक हिंसा की दार्शनिक व ऐतिहासिक जड़ों की तलाश इस पत्रिका के पूर्व अंक में की जा चुकी है। यह लेख उसी क्रम को आगे बढ़ाते हुए बच्चों पर हो रहे शारीरिक दण्ड की समाजशास्त्रीय पड़ताल करता है। शोधकर्ता द्वारा अभिभावकों, छात्रों और शिक्षकों से साक्षात्कार व प्रश्नावली तकनीकी की मदद से उस व्यवहारात्मक पहलू को समझने का प्रयास किया गया है जो इस व्यवस्था को बनाए रखने में मदद करता है। समाजशास्त्रीय नज़रिए से बच्चों और वयस्कों के सम्बन्धों के रूप, अनुशासन व शिक्षा का अर्थ और 'बालक' की व्यवहारात्मक समझ महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है।

बच्चों पर शारीरिक दण्ड के समाजशास्त्रीय कारणों के तीन पहलू उभरते हैं। पहला, बालक[1]/ बच्चे की समझ क्या है (अवधारणात्मक व व्यवहारात्मक स्तर पर); दूसरा, शिक्षा व अनुशासन के स्वरूप व उपयोगिता के सम्बन्ध में अभिभावक व शिक्षक क्या विचार रखते हैं; तीसरा, शिक्षकों पर भरोसा और भय की संस्कृति की स्वीकार्यता का बरक़रार रहना। इस लेख में इन तीन पहलुओं पर चर्चा करते हुए इस जटिल समस्या की गहराई का पता लगाने का प्रयास करेंगे।

बालक कौन

समाज में 'बालक' को किस अर्थ में लिया जाता है? बालक-वयस्क सम्बन्ध इस समझ पर काफ़ी हद तक निर्भर करता है। इस समझ को निर्मित करने में संविधान की ज़्यादा मदद नहीं ली जा सकती क्योंकि संविधान में न केवल अलग-अलग स्थान पर बालक को अलग-अलग तरीक़े से परिभाषित किया गया है, बल्कि वह बालक की उस समझ को समझने में भी अपूर्ण है जो बालक के सन्दर्भों से निर्मित होती है। इसलिए हम इसे दो तरीक़ों से समझने का प्रयास करेंगे। पहला, संविधान क्या कहता है अर्थात क़ानूनी समझ क्या है। और दूसरा, समाज में व्यवहारगत क्या व्याप्त है। पहले तरीक़े का सहारा लें तो निकल कर आता है कि भारतीय बालक को अलग-अलग तरह से परिभाषित किया गया है जैसे– बाल विवाह निषेध क़ानून

1. यहाँ बालक किसी लिंग विशेष का पर्याय न होकर, इसका सम्बन्ध बच्चे से है जो लिंग-आधारित न होकर सभी को समाहित करता है।

एक लड़के को 21 वर्ष व एक लड़की को 18 वर्ष की आयु पूरी न होने तक बालक मान कर उनके विवाह का निषेध करता है। यहाँ पर भी एक लड़के व लड़की को बालक के रूप में देखने का निर्धारित स्तर अलग-अलग है। इसी प्रकार यदि खनन क़ानून पर चर्चा की जाए तो वह कहता है कि 18 वर्ष से कम आयु का कोई भी व्यक्ति किसी भी खनन कार्य में काम करने योग्य नहीं माना जाएगा। वहीं दूसरी ओर बाल मज़दूर प्रतिबन्ध क़ानून कहता है कि 14 वर्ष से कम आयु वाले व्यक्ति को बालक मान कर किसी भी कार्य में नहीं लगाया जाएगा।

जहाँ अनुच्छेद 45, 14 वर्ष तक के बच्चों की शिक्षा की बात करता है, वहीं अनुच्छेद 326, 18 वर्ष से अधिक उम्र के लोगों को मताधिकार देता है। मताधिकार से वंचित करने का मूल तर्क अपरिपक्वता है। ऐसी स्थिति में बचपन की जो अवधारणा बनती है उसकी सीमा 18 वर्ष तक जाती है परन्तु अनुच्छेद 45 मात्र 14 वर्ष तक के बालकों के सन्दर्भ में अपनी आवाज़ को बुलन्द करता है। इस प्रकार 'बालक' किसे कहा जाए? इसे लेकर अलग-अलग मत मौजूद हैं।

निष्कर्ष के तौर पर निकल कर आता है कि राज्य अपनी सहूलियत व उपयोगिता के अनुसार बालक को अलग-अलग तरीक़े से परिभाषित करता है। एक बालक काम करने के लिए तो 14 वर्ष के पश्चात वयस्क बन जाता है परन्तु मताधिकार के लिए इसे बालक ही माना जाता है। चूँकि खनन प्रक्रिया में भारी कार्य करना होता है जिसके लिए आवश्यक शारीरिक क्षमता ज़रूरी है अत: खनन प्रक्रिया में कार्य करने के लिए उसकी आयु 18 वर्ष होना आवश्यक है। लेकिन शिक्षा का अधिकार 6 से 14 वर्ष की आयु तक ही सीमित कर दिया जाता है। इस प्रकार के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय संविधान में बहुत ही चालाकी से बालक को परिभाषित किया गया है जो न केवल राज्य के दोहरेपन को प्रकट करता है बल्कि 'बच्चे' की परिभाषा व समझ के विवाद को भी बढ़ावा देता है।[2]

वहीं दूसरी ओर, कई ऐसे शोध हैं जो इस गुत्थी को सुलझाने का प्रयास करते हैं। मसलन, बिष्ट (2008) द्वारा 'बालक कौन है' नामक शोध द्वारा वयस्क दृष्टिकोण से बालक को समझा गया। इस अध्ययन से यह निकल कर आया कि भारतीय समाज में वयस्कों की दृष्टि में बालक वह है, जो निरन्तर आवश्यकता, सहारा, मार्गदर्शन व सुरक्षा के लिए अध्यापकों व अभिभावकों पर निर्भर रहता है, और एक वयस्क वह है, जो बालकों को यह सब उपलब्ध कराता है। शोध में कुछ वयस्कों के द्वारा कहा गया, "हम भारतीय परिवार के रूप में बालक को कभी उसकी मनमर्ज़ी नहीं चलाने देते, हमारे अपने कुछ मूल्य हैं, जिन्हें हम अपने बच्चों से पालन करवाना चाहते हैं... चाहे बल प्रयोग से ही।"[3]

> बिष्ट के 'बालक कौन है' अध्ययन से यह निकल कर आया कि भारतीय समाज में वयस्कों की दृष्टि में बालक वह है, जो निरन्तर आवश्यकता, सहारा, मार्गदर्शन व सुरक्षा के लिए अध्यापकों व अभिभावकों पर निर्भर रहता है, और एक वयस्क वह है, जो बालकों को यह सब उपलब्ध कराता है।

यह अध्ययन हमारी पड़ताल के दूसरे आयाम पर हमें ले जाता है अर्थात भारतीय समाज में बच्चे और वयस्क के सम्बन्ध किस रूप में हैं। ये अध्ययन साफ़तौर पर बताते हैं कि यहाँ वयस्क को भरण-पोषण करने वाला और

2. शर्मा, कंचन (2014), 'आख़िर बालक कौन ? क़ानूनी उलझनें और बच्चों का भविष्य', *शिक्षा विमर्श*, वर्ष 16, अंक 6.

3. Bisht, R (2008), 'Who is A Child?: The Adults' Perspective within Adult–Child Relationship in India' *Interpersona*, Vol. 2, No. 2.

बच्चे को ग्रहण करने वाला (receiver) समझा जाता है। इसी अध्ययन की भाँति रमन (2008) भी अपने अध्ययन में वयस्क और बच्चे के सम्बन्ध में दो मुख्य केन्द्रीय विशेषताएँ पाते हैं : कर्तव्य व उत्तरदायित्व। वे कहते हैं, "परम्परागत रूप से बालकों को निर्णय लेने सम्बन्धी मामलों में वयस्कों पर निर्भर माना जाता है। वयस्कों के लिए भी बालक का पालन-पोषण एक ज़िम्मेदारी के रूप में देखा जाता है और ये माना जाता है कि ये ज़िम्मेदारी तभी ख़त्म होती है जब बच्चे का विवाह हो जाता है। बच्चे और वयस्क का सम्बन्ध ज़िम्मेदारी से आरम्भ होकर नियंत्रण का रूप धारण कर लेता है।"[4] हालाँकि इस सुरक्षा के भाव का उदय प्यार से माना जा सकता है परन्तु जिस रूप में बड़े स्तर पर भारतीय वयस्क इस भूमिका को निभाते हैं वो आधिकारिक उपागम पर होता है।

शोधकर्ता द्वारा अपने अध्ययन में भी वयस्कों से बात करने के दौरान यह पाया गया कि वयस्क बच्चों को एक आधिकारिक ज़िम्मेदारी के तौर पर लेते हैं और ये रूप बच्चों को गौण स्थान देता है। अभिभावकों से हुए साक्षात्कार से यह पहलू स्पष्ट तौर पर निकल कर आया कि अभिभावकों के विचार में 'डर पैदा करने की भावना' एक आवश्यक पहलू है। अभिभावकों की समझ में बालकों की शैक्षिक प्रगति व अनुचित व्यवहार में सुधार के लिए विद्यालयों में दण्ड का भय होना ज़रूरी है। कुछ अभिभावकों ने कहा कि उन्हें भी बालपन में इसी प्रकार से रहना सिखाया गया था, क्योंकि बचपन में हम इतने समझदार नहीं होते कि सभी बातों को समझ पाएँ। अतः हमारे भले के लिए ही बड़े हम पर सख़्ती करते हैं, जिससे हम भविष्य में सफल रहते हैं। एक अभिभावक ने शारीरिक दण्ड को करेले की संज्ञा देते हुए कहा कि करेला जब खाते हैं, वह कसेला लगता है परन्तु स्वास्थ्य की दृष्टि से वह काफ़ी बेहतर है। ऐसे ही कुछ अन्य कथनों को बॉक्स-1 में शामिल किया गया है।

बॉक्स-1

"बिना डर के कभी कोई काम नहीं होता, चाहे पढ़ाई का हो या ज़िन्दगी का कोई भी काम हो।"

"सजा मिलनी ठीक है, यह ज़रूरी होता है तभी बच्चे सुधरेंगे।"

"स्कूल में सख़्ती होना बहुत ज़रूरी है, बच्चे स्कूल से भागते हैं, पढ़ाई नहीं करते हैं... टीचर इन सब बातों का ध्यान रखें, इन्हें ग़लतियों पर मारें व सख़्त व्यवहार करें... तो ये तो बढ़िया ही है... जब स्कूल में सख़्ती होगी तभी तो पढ़ाई सही होगी।"

"करेला जब खाते हैं वह कसेला लगता है परन्तु स्वास्थ्य की दृष्टि से उससे बेहतर कुछ नहीं है।"

"अगर सज़ा पूरी तरह ख़त्म कर दी जाए तो वो बच्चे जो मार से ही मानते हैं, वो तो पूरी तरह बरबाद हो जाएँगे... तो स्कूल में डर बहुत ज़रूरी है।"

"पहले प्यार से समझाओ, अगर नहीं माने तो छड़ी उठाओ, अगर तब कर लेता है तो इसका मतलब उसे छड़ी का डर है, इस डर से यदि बालक पढ़ने लगे तो ये तो उसके लिए ही अच्छा है... बच्चों के लिए डर बहुत ज़रूरी होता है... घर पर माता-पिता का डर और स्कूल में टीचर का डर।"

स्रोत : अभिभावकों से लिया गया साक्षात्कार

अनुशासन की समझ

इसी के साथ जो दूसरा पहलू निकल कर आता है वह है, अनुशासन। जीवन जीने के तरीक़े को समाज का वयस्क किस अर्थ में ग्रहण करता है और अपने बच्चों से किस प्रकार की

4. Raman, V (2000), 'Politics of Childhood: Perspectives from the South', Economic and Political Weekly, Vol. 35, No. 46, pp. 4055–4064.

अपेक्षा रखता है, इसे हम बॉक्स–2 की मदद से समझ सकते हैं।

बॉक्स–2

> "अनुशासन का मतलब प्यार नहीं होता... कुत्ते की दुम सौ साल नली में रखो तब भी सीधी नहीं होती पर डण्डा दिखाओ तो सीधी... अतः अनुशासन के लिए दण्ड ज़रूरी है।"
>
> "अनुशासन का मतलब है बच्चे टीचर की बात मानें, सब काम समय पर करें, बड़ों का सम्मान करें, और पढ़ाई के साथ–साथ अच्छी बातें सीखें।"
>
> "स्कूल में अनुशासन तब आता है जब घर से ही माँ–बाप उन्हें ये सिखाएँ... हमारी माँ इतनी सख़्त थीं कि स्कूल में कभी कुछ ग़लत करने से पहले यह सोच कर डर लगता था कि घर पर पता चल गया तो क्या होगा।"
>
> स्रोत : शिक्षकों और अभिभावकों से लिया गया साक्षात्कार

इस पहलू के साथ जो एक अन्य जड़ जुड़ती है वह है स्कूली अनुशासन और शिक्षा व डर का आपसी सम्बन्ध। इस पर चर्चा करते हुए सुवासिनी अय्यर (2013) अपने अध्ययन की तर्ज़ पर बताती हैं कि स्कूली अनुशासन को प्रायः अधिगम के साथ जोड़ दिया जाता है। उनके शोध में यह पाया गया कि अध्यापकों द्वारा अनुशासन बनाए रखने के लिए शारीरिक दण्ड देने से लेकर अच्छे बच्चे और गन्दे बच्चे का लेबल दिया जाना सामान्यतः प्रयोग में लाया जाता था। अध्यापकों द्वारा गन्दे बच्चे का लेबल उन बच्चों को दिया जाता था जो टेस्ट में कम नम्बर लाते थे। शिक्षकों द्वारा छात्रों को थप्पड़ मारना, मुर्ग़ा बनाना, अच्छे बच्चे–गन्दे बच्चे का लेबल देना और उनके लिए मूर्ख, नालायक जैसे शब्दों का प्रयोग साधारण घटना है। अध्यापकों के लिए अच्छे बच्चे वे हैं, जो समय पर काम करें और शान्त बैठें। विद्यालय में बच्चों को अनुशासित करने के लिए 'अच्छे बच्चे कैसे... ऐसे, मुँह पर उँगली कैसे... ऐसे' नामक एक संस्कृति प्रयोग प्रतिदिन किया जाता था।[5] वह अपने शोध में यह पाती हैं कि अनुशासन, दण्ड और पढ़ाई (लर्निंग) का आपस में अटूट सम्बन्ध है। सामान्यतः विद्यालय में यह विश्वास किया जाता है कि लर्निंग एक शान्त गतिविधि है। छात्रों से यह उम्मीद की जाती थी कि शिक्षक द्वारा पढ़ाते समय वे शान्त व एक सही तरीक़े से बैठें। और यही अनुशासन का प्राय बना दिया जाता है।

अभिभावकों का अटूट विश्वास

अभिभावकों से हुए साक्षात्कार से एक अन्य महत्त्वपूर्ण पहलू जो उभर कर सामने आया, वह यह कि अभिभावकों की शिक्षकों के प्रति अटूट श्रद्धा है। और वे मानते हैं कि विद्यालय में बालक के ग़लत व्यवहार के लिए यदि कोई शिक्षक सख़्ती करते हैं या दण्ड देते हैं तो इसमें उन्हीं के बच्चों की कोई कमी रही होगी। इस प्रकार के विचार को मज़बूती कहाँ से मिलती है, इसपर चर्चा करते हुए राजपूत व वालिया (2001) कहते हैं, "गुरु को भारतीय दर्शन / शास्त्रों में उच्च स्थान की स्वीकृति है व समाज में शक्ति के विभाजन में गुरु को उच्च स्थान देना ही गुरु के द्वारा शारीरिक दण्ड के प्रयोग को मान्य बना देता है।"[6] अध्ययन न्यादर्श में शामिल सभी अभिभावकों का यह मानना है कि शिक्षक यदि बालक को दण्ड देता है तो वह उसी के भले के लिए होता है। इसमें शिक्षक का अपना निजी हित या बालक से निजी दुश्मनी का पहलू नहीं होता, बल्कि शिक्षक यह सब बालक द्वारा भविष्य में होने वाली या करने

5. Iyer, S (n.d.), 'An Ethnographic Study of Disciplinary and Pedagogic Practices in a Primary Class' (2013), *Journal of Interdisciplinary Economics*, SAGE Publications, Contemporary Education Dialogue, 10(2) pp 163–195.

6. Rajput, J S, & Walia, K (2001), 'Reforms in Teacher Education in India', *Journal of Educational Change*, Vol. 2, No. 3, pp 239–256.

वाली ग़लतियों को रोकने के लिए करता है। इन विचारों की अभिव्यक्ति की कुछ झलकियाँ बॉक्स–3 में प्रदर्शित की गई हैं।

बॉक्स–3

"बच्चों की जब ग़लती होती है तब ही तो टीचर मारते हैं, वो भी इनके भले के लिए... टीचर बच्चों का दुश्मन तो नहीं है।"

"टीचर बच्चों के दुश्मन नहीं होते, जो बिना बात पर मारने लगें... घर में बच्चों को सँभालना आसान है पर एक टीचर की सोचो, जो इतने सारे बच्चों को 6–8 घण्टे के लिए सँभालते हैं।"

"कोई भी टीचर यह नहीं सोचता कि उनका बालक ग़लत दिशा में जाए... उनके भले के लिए ही टीचर मारते हैं।"

"कोई टीचर कभी भी बच्चे के ग़लत के लिए नहीं मारता, उनके भले के लिए करते हैं वो ये... उनके दुश्मन नहीं हैं वो। बच्चे अगर स्कूल से भाग जाएँगे, पढ़ाई नहीं करेंगे, लड़ाई करेंगे तो टीचर क्या करेगा।"

स्रोत : अभिभावकों से लिया गया साक्षात्कार

अभिभावकों की सहमति

छात्रों की भाँति अभिभावकों से भी यह पूछा गया कि शिक्षक–अभिभावक बैठकों में जाकर वे क्या करते हैं, क्या कहते हैं? साक्षात्कार में शामिल किए गए दस अभिभावकों में से नौ ने कहा कि वे जब भी विद्यालय जाते हैं तो बालक की शैक्षिक प्रगति के बारे में पूछने के साथ–साथ अध्यापक को यह भी बोल कर आते हैं कि किसी भी तरह की अनुशासनहीनता करने पर और पढ़ाई में मन न लगाकर पढ़ने पर वे बिना देरी किए सज़ा देने में नरमी न करें। कुछ का कहना था कि ऐसे सम्मेलन होना बहुत ज़रूरी है क्योंकि इसके द्वारा हमें हमारे बच्चों की ग़लतियों का पता चलता रहता है, और बच्चे में भी डर बना रहता है कि कुछ भी ग़लत करने पर हमारे माँ–बाप को इसकी जानकारी मिल जाएगी। वहीं कुछ ने कहा कि चूँकि हमारे बालक हमसे नहीं डरते इसलिए हम जब स्कूल जाते हैं, तब हम उनकी सारी शिकायत अध्यापक को बताते हैं। बच्चे अध्यापक के डर से घर पर भी अनुशासन में रहते हैं और सारी बात मानते हैं। यहाँ एक अन्य बिन्दु जो उजागर करने योग्य है वह यह कि जिन अभिभावकों से साक्षात्कार किया गया उनमें से अधिकतर अभिभावकों के बच्चे सरकारी स्कूलों में पढ़ने वाले और निम्न परिवारों के थे। ऐसी स्थिति में बढ़ती प्रतियोगिता के कारण बालक पीछे न रह जाए, ये भावना अभिभावकों को यह निर्णय लेने पर मज़बूर करती है कि यदि बालक डाँट–मार से भविष्य में कुछ बन जाता है, तो मार ही ठीक है। अतः इस सन्दर्भ में भी इस समस्या को समझना ज़रूरी है कि कैसे भविष्य निर्माण को लेकर होने वाली असुरक्षा व प्रतियोगिता भी इस समस्या में निहित है।

नेविने (2012) का अध्ययन भी बताता है कि "अभिभावकों का अटूट विश्वास परम्परागत दण्ड मान्यताओं पर है। इन मान्यताओं के अनुसार शारीरिक दण्ड छात्रों के अधिगम स्तर में सुधार, सुधारात्मक व्यवहार के लिए और कक्षा में शिक्षकों की सम्माननीय स्थिति को बनाए रखने में मददगार है।" इसी तरह इस अध्ययन से भी यह निकल कर आया कि अभिभावक अपने बालकों के व्यवहार व अधिगम स्तर में सुधार के लिए दण्ड को आवश्यक मानते हैं।[7]

पूनम बत्रा (2009) इस समस्या की जड़ों को वयस्कों की अनुमति में देखते हुए कहती हैं कि शारीरिक दण्ड को एक सामाजिक–सांस्कृतिक यथार्थ के तौर पर देखने की आवश्यकता है। वयस्क व बालक के मध्य असमान शक्ति सम्बन्ध के कारण यह समस्या प्रतिदिन कक्षा की

7. Gerald, N K, Augustine, M K, & Ogetange, T B (2012), 'Teachers and Pupils Views on Persistent Use of Corporal Punishment in Managing Discipline in Primary Schools in Starehe Division, Kenya', *International Journal of Humanities and Social Science*, Vol. 2, No. 19, pp. 268–274.

एक संस्कृति के रूप में उभरती है। अधिकतर विद्यालयों में बालक व शिक्षक के सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक स्तर में अन्तर इस समस्या के केन्द्र में है। अलग-अलग पृष्ठभूमि से आने वाले बालकों के सन्दर्भों को शिक्षक नहीं समझ पाते व साथ ही अधिकतर शिक्षक और प्रशिक्षण संस्थान चुप्पी (मौन) को ही प्रभावी कक्षा का पर्याय मानते हैं।[8] अतः इस समस्या को मिलने वाले सांस्कृतिक अनुमोदन के सन्दर्भ में समझना आवश्यक है। बॉक्स-4 व 4.1 में कुछ अभिभावकों व बच्चों के बयानों को प्रस्तुत किया गया है।

बॉक्स-4

"मैं जब स्कूल जाती हूँ तो सख़्ती करने के लिए बोल कर आती हूँ क्योंकि एक टीचर भी एक माँ की ही तरह बच्चों का अच्छा-भला सब जानते-समझते हैं, और जानते हैं कि कौन-सा बालक कैसा है।"

"मैं जब स्कूल जाती हूँ तो बोल कर आती हूँ कि मैडम एक बार प्यार से समझाओ, अगर न माने तो मारने में नरमी मत करना।"

"मैं जब स्कूल जाती हूँ तो सब शिकायत बता कर आती हूँ इनकी... मैं तो बोल कर आती हूँ कि अगर कहना न माने, पढ़ाई ना करे तो सख़्ती करना।"

"हम पहले पूछते हैं कि पढ़ाई कैसी चल रही है। सब ठीक चलता है तो ठीक, अगर नहीं तो बोल कर आता हूँ सर को, कि ठीक न पढ़े-लिखे तो पकड़ कर हड्डी तोड़ दो।"

स्रोत : अभिभावकों से लिया गया साक्षात्कार

बॉक्स-4.1

"बच्चों के मम्मी-पापा ख़ुद आकर बोलते हैं मारने को। मेरे पापा ने भी मुझे इस स्कूल में इसीलिए डाला क्योंकि इसमें बहुत सख़्ती है।"

"पीटीएम वाले दिन जो बच्चे अच्छे होते हैं मैडम उन्हें अच्छा बोलती हैं, जो शैतान बच्चे हैं, उन्हें गन्दा बोलती हैं, उनकी अच्छाई नहीं देखतीं बस शिकायत करती हैं।"

स्रोत : बच्चों से हुई बातचीत

दण्ड का आत्मसातीकरण

किसी भी दमनात्मक शक्ति के लिए यह आवश्यक है कि वह जिसका शोषण कर रही हो, उसे स्वीकृति प्रदान करता रहे। इसके लिए यह आवश्यक है कि शोषित हो रहे लोग इस बात का आत्मसातीकरण करें कि यह व्यवस्था उनके भले के लिए है।[9] इस विचार को जब स्कूली दण्ड व्यवस्था में ढूँढ़ा गया तो यह उभर कर आया कि बच्चों ने दण्ड व्यवस्था को अपने मन-मस्तिष्क में गहरे से आत्मसात कर लिया है जैसे– जब छात्र-छात्राओं से पूछा गया कि "क्या विद्यालय में दण्ड दिया जाना ठीक है?" तो कुछ छात्र-छात्राओं का कहना था कि "हाँ, दण्ड देना ठीक है।" इसे ज़रूरी बताए जाने के कारणों पर जब चर्चा की गई तो उनका ये मानना था कि शिक्षक यह सब उन्हीं के भले (ताकि वे पढ़ाई में अच्छे हों और अच्छी बातें सीखें) के लिए करते हैं।

यदि टीचर ऐसा न करे तो स्कूल बिगड़ जाएगा व बच्चे पढ़ाई नहीं करेंगे। कुछ ने कहा कि "टीचर तब ही मारते हैं जब हम लोग कोई ग़लती करते हैं... ग़लती करने पर पिटाई होना तो ठीक है।" कुछ ने दण्ड को अपने विद्यालयी अनुभव की सामान्य परिघटना कहा जिसमें उन्हें कुछ ग़लत नज़र नहीं आता। जैसे– गिजुभाई (2006) अपने स्कूली अनुभवों में से एक अनुभव में बताते हैं कि जब वे अपनी कक्षा के बालकों

8. Batra, Poonam (2009), 'Teachers and Corporal Punishment', *Eliminating Corporal Punishment in Schools*, NCPCR, New Delhi.

9. अल्थूज़र, ग्रामसी, कमला भसीन आदि के लेखन में इस प्रकार के विवरण देखने को मिलते हैं।

से दण्ड दिए जाने पर चर्चा करते हैं तो बालक अध्यापक द्वारा बालकों की पिटाई करने को सही बताते हुए कहते हैं, "सबक़ तो याद होना ही चाहिए, न होगा तो मास्टर और क्या करेंगे? सज़ा ही देंगे। वह और कर ही क्या सकते हैं!"[10] इस प्रकार यहाँ यह देखा जा सकता है कि दण्ड व्यवस्था को स्वयं बालक ही वैधता दे रहा है, जिसके कारण यह समस्या और अधिक गम्भीर रूप धारण कर लेती है। बॉक्स 4.1 में कुछ छात्र-छात्राओं के विचारों को उन्हीं की भाषा में लिखा गया है, जिसके अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि विद्यालयों में शारीरिक दण्ड की जड़ें बालमन पर गहरे से आत्मसात हैं (देखें बॉक्स-5)।

बॉक्स-5

"स्कूल में ज़्यादा मारना नहीं चाहिए पर थोड़ी-बहुत सज़ा देनी चाहिए ताकि बच्चे काम करें, बच्चे फिर डर कर काम करके लाते हैं।"

"स्कूल में नॉर्मल सज़ा मिलती है, मतलब थोड़ी-बहुत मारते हैं ज़्यादा नहीं, डाँटते हैं थोड़ा-बहुत और हाथ खड़ा करवा देते हैं।"

"जब ग़लती करते हैं तब मारते हैं, ऐसा करना ठीक है क्योंकि स्कूल बिगड़ा हुआ है, बच्चे भाग जाते हैं घर, तो मारना ज़रूरी है।"

"जब बच्चे भागते हैं, शोर करते हैं या यूनिफ़ॉर्म पूरी नहीं पहन कर आते तब ही सरजी मारते हैं, बिना बात पर कुछ नहीं कहते। सरजी ठीक करते हैं, नहीं तो बच्चे बात नहीं मानेंगे।"

स्रोत : बच्चों से हुई बातचीत

निष्कर्ष

क्षेत्र अध्ययन में हुई बातचीत को मद्‌देनज़र रखने के साथ-साथ हमें फूको के उन विचारों को भी समझना आवश्यक है जहाँ वे अनुशासन की उपस्थिति पर ही प्रश्न चिह्न लगाते हैं। फूको (1979) अपनी पुस्तक *अनुशासन व दण्ड* में विचार करते हैं कि आख़िर लोग अपराध क्यों करते हैं? इसपर विचार करते हुए वे कहते हैं कि निम्न सामाजिक स्तर के लोग अपराध करते हैं, अपराध के द्वारा वे सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन लाना चाहते हैं तथा सामाजिक रूप से उच्च वर्ग का विरोध प्रदर्शित करना चाहते हैं। इस सन्दर्भ में अनुशासन अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका में आ जाता है। फूको कहते हैं कि लगातार निरीक्षण एवं बलपूर्वक अनुशासन अपराधियों की इच्छाशक्ति को तोड़ देता है, उन्हें प्राणहीन शरीर के रूप में ढाल देता है, क्योंकि प्रशासकों के लिए इन प्राणहीन शरीरों को नियंत्रित करना सरल प्रतीत होता है। फूको के अनुसार अनुशासन शारीरिक गतिविधियों को नियंत्रित करने का एक तरीक़ा है। यह एक प्रकार की शक्ति है। और अनुशासन ही एकमात्र ऐसा तरीक़ा है, जिसके द्वारा इस नियंत्रण को सम्भव बनाया जा सकता है।

फूको के इन विचारों के अनुकूल जब स्कूली व्यवस्था को समझने का प्रयास किया जाता है तो सम्पूर्ण स्कूली प्रक्रिया में शिक्षक शक्तिशाली अवस्था में और बालक ऐसी स्थिति में नज़र आता है, जहाँ मात्र उसे निश्चित नियमों का पालन कर अपने व्यवहार को नियंत्रित करना होता है। एक शिक्षक के द्वारा बालक को अज्ञानी व स्वयं को ज्ञानी समझना, माता-पिता द्वारा बच्चों के अच्छा प्रदर्शन करने को शिक्षा का पर्याय मान लेना, स्कूली शिक्षा को अनुशासन का काल बना देना, और बच्चों द्वारा इस पूरी व्यवस्था को आत्मसात कर लेने की प्रक्रिया इस समस्या को मज़बूती प्रदान करती है। समाज में बड़े (लिंग, उम्र, जाति, वर्ग, नस्ल इत्यादि के आधार पर) और छोटे के मध्य का पदानुक्रम और बड़े की प्राधिकारी शक्ति को स्वीकार कर चुनौती ना देने की प्रवृत्ति समाज का वह पहलू है जो अलग-अलग स्थान पर हिंसा के रूप में प्रकट होता है। जैसे– कभी बच्चों पर शारीरिक दण्ड के रूप में, कभी दलितों को मार डालने की घटना के रूप में, तो कभी घरेलू हिंसा जैसी घटना के रूप में।

10. गिजुभाई (2006), *दिवा स्वप्न*, अनुवादित : काशीनाथ त्रिवेदी, नई दिल्ली : ग्रन्थमाला–1

सन्दर्भ

Batra, Poonam (2009), *‘Teachers and Corporal Punishment’*, *Eliminating Corporal Punishment in Schools*, NCPCR, New Delhi

Bisht, R. (2008), ‘Who is A Child?: The Adults’ Perspective within Adult–Child Relationship in India’. *Interpersona,* Vol. 2, No. 2

Gerald, N K, Augustine, M K, & Ogetange, T B (2012), ‘Teachers and Pupils Views on Persistent Use of Corporal Punishment in Managing Discipline in Primary Schools in Starehe Division, Kenya’, *International Journal of Humanities and Social Science*, Vol. 2, No. 19, pp. 268–274

Rajput, J S, & Walia, K (2001), ‘Reforms in Teacher Education in India’, *Journal of Educational Change*, Vol. 2, No. 3, pp. 239–256

Raman, V (2000), ‘Politics of Childhood: Perspectives from the South’, *Economic and Political Weekly*, Vol. 35, No. 46, pp. 4055–4064.

Iyer, S (n.d.), ‘An Ethnographic Study of Disciplinary and Pedagogic Practices in a Primary Class’ (2013), *Journal of Interdisciplinary Economics,* SAGE Publications, Contemporary Education Dialogue, 10(2) pp. 163–195

गिजुभाई (2006), *दिवा स्वप्न,* अनुवादित : काशीनाथ त्रिवेदी, नई दिल्ली : ग्रन्थमाला–1

फूको, शक्ति की अवधारणा, लेखक : नाथन विदर, शोधार्थी 9 : 2010(1), नई दिल्ली : विकासशील समाज अध्ययन पीठ (CSDS), pp. 36–41।

अल्थूज़र, ग्रामसी, कमला भसीन आदि के लेखन में इस प्रकार के विवरण देखने को मिलते हैं।

शर्मा, कंचन (2014), ‘आख़िर बालक कौन ? क़ानूनी उलझनें और बच्चों का भविष्य’, *शिक्षा विमर्श*, वर्ष 16, अंक 6।

कंचन शर्मा दिल्ली विश्वविद्यालय के शिक्षा विभाग की शोधार्थी हैं व लेखन कार्य से जुड़ी हैं ।
सम्पर्क : kanchansharmacei@gmail.com